

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 7 अध्याय 11: सनातन धर्म

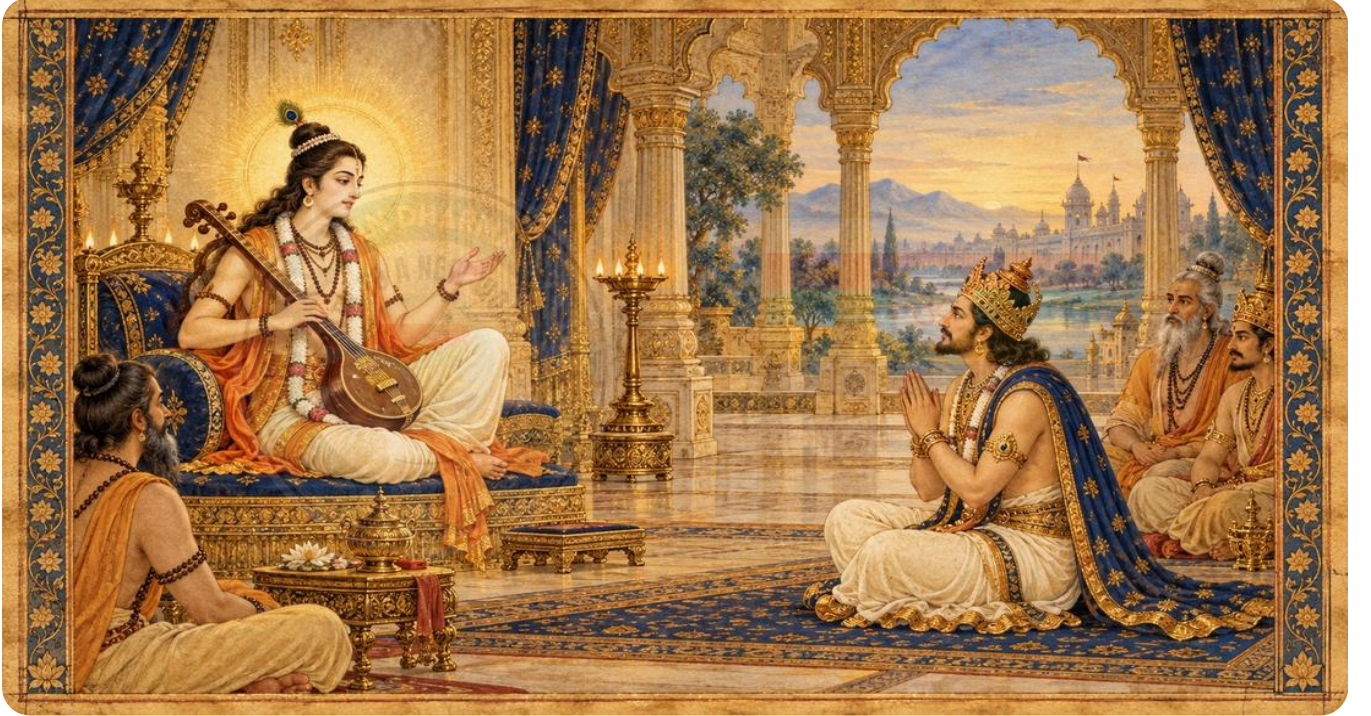
14 September 2026



पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



प्रह्लाद की कथा सुनकर सम्राट युधिष्ठिर ने एक बड़ा प्रश्न किया: मनुष्य को वस्तुतः किस प्रकार जीना चाहिए? नारद का उत्तर शास्त्र के सर्वाधिक स्पष्ट जीवन-मार्गों में से एक है — एक ऐसा मार्ग जो हर स्थिति में, हर आत्मा के लिए खुला है, और जो अन्ततः भगवान् तक ले जाता है।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

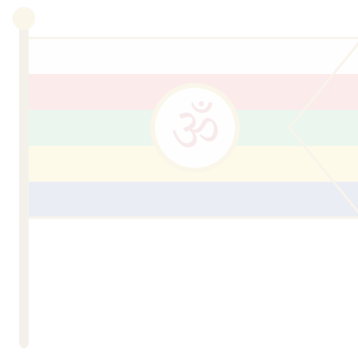
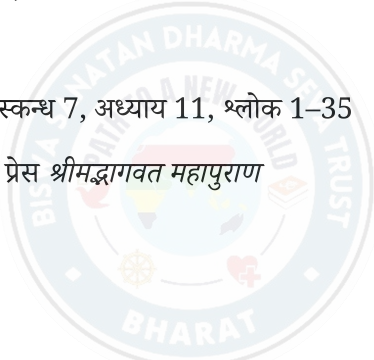
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। दशम अध्याय ने प्रह्लाद की महान कथा को पूर्ण किया। अब, सप्तम स्कन्ध के इस एकादश अध्याय में, सम्राट युधिष्ठिर कथा से हटकर उसकी जीवन्त शिक्षा की ओर मुड़ते हैं और सिद्ध नारद से एक सरल किन्तु गम्भीर प्रश्न करते हैं: मनुष्यों के लिए सनातन आचरण-धर्म क्या है? नारद सनातन-

धर्म के एक तेजोमय सार से उत्तर देते हैं — पहले वे तीस गुण बताते हैं जो बिना किसी अपवाद के हर व्यक्ति के हैं, और फिर चार सामाजिक वर्णों तथा एक पतिव्रता स्त्री के विशिष्ट कर्तव्य तथा गुण। सम्पूर्ण उपदेश एक ही मूल की ओर लौटता रहता है: कि समस्त सदाचरण का सच्चा स्रोत स्वयं भगवान् हैं, और कि कर्तव्य का समूचा प्रयोजन हृदय को तब तक शुद्ध करना है जब तक वह उनमें विश्राम न पा ले।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 7 (सप्तम स्कन्ध)
- अध्याय: 11
- अध्याय-शीर्षक: सनातन धर्म तथा चार सामाजिक वर्ण
- मुख्य वक्ता: सिद्ध नारद
- मुख्य श्रोता: सम्राट युधिष्ठिर
- मुख्य स्थान: सम्राट युधिष्ठिर की सभा, नारद के प्रवचन के क्रम में
- मुख्य विषय-वस्तु: सदाचरण का सनातन धर्म — तीस सार्वभौमिक गुण, चार सामाजिक वर्णों के कर्तव्य तथा लक्षण, और एक पतिव्रता स्त्री के कर्तव्य
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 7, अध्याय 11, श्लोक 1-35
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण



युधिष्ठिर का प्रश्न

प्रह्लाद की कथा — जो पवित्र आत्माओं की सभाओं में भी प्रशंसित है — सुनकर युधिष्ठिर आनन्द से भर उठे और नारद से आगे पूछा। वे मनुष्यों के लिए विहित सनातन धर्म के विषय में सुनना चाहते थे, चार वर्णों तथा चार आश्रमों को नियन्त्रित करने वाली आचार-संहिता सहित, जिसका पालन करते हुए व्यक्ति अन्ततः परम को प्राप्त करता है। और उन्होंने यह उचित गुरु से पूछा, क्योंकि नारद ब्रह्मा के मानस-पुत्र तथा सर्वप्रिय हैं, जो तप, एकाग्रता तथा गहन ध्यान से पवित्र हुए हैं। युधिष्ठिर ने कहा कि केवल शान्त, दयालु आत्माएँ जो भगवान् नारायण के प्रति समर्पित हैं, वस्तुतः धर्म की सर्वोच्च तथा सर्वाधिक गोपनीय अवधारणा को जानती हैं।

नारायण से सीखा गया धर्म

नारद ने अजन्मा भगवान् को, समस्त प्राणियों में धर्म के प्रवर्तक को प्रणाम करते हुए आरम्भ किया, और घोषित किया कि वे सनातन धर्म ठीक वैसे ही बताएँगे जैसे उन्होंने उसे दिव्य ऋषि नारायण के मुख से सीखा था — जो अपने सहचर नर के साथ, आज भी संसार के कल्याण के लिए बदरिकाश्रम में तप कर रहे हैं। फिर उन्होंने समस्त धर्म की सच्ची नींव बताई। सदाचरण केवल प्रथा या मानव-मत पर आश्रित नहीं है; उसका मूल स्वयं भगवान् हैं, जो समस्त वेदों के मूर्तरूप हैं, ज्ञानियों द्वारा प्रदत्त स्मृतियों सहित तथा शुद्ध हृदय की स्थिर सन्तुष्टि सहित:

धर्ममूलं हि भगवान्सर्ववेदमयो हरिः ।

स्मृतं च तद्विदां राजन्येन चात्मा प्रसीदति ॥ ७ ॥

dharma-mūlaṁ hi bhagavān sarva-vedamayo hariḥ smṛtaṁ ca tad-vidāṁ rājan yena cātmā prasīdati

अर्थ: धर्म का मूल स्वयं भगवान् श्रीहरि हैं, जो समस्त वेदों के मूर्तरूप हैं; वैसे ही उन्हें जानने वालों द्वारा प्रदत्त स्मृतियाँ, हे राजन्, तथा वह आन्तरिक सन्तुष्टि जिससे आत्मा प्रसन्न होती है। (SB 7.11.7)

नारद की यह परिभाषा सायास भारित है। वे धर्म का मूल न तो प्रथा में रखते हैं, न मानव-मत में, न अकेले ज्ञानियों की स्मृतियों में — वे उसका स्रोत साक्षात् भगवान् में रखते हैं, और उसकी कसौटी बाह्य रूप में नहीं अपितु इसमें रखते हैं कि आत्मा वस्तुतः संतुष्ट होती है या नहीं। यही कारण है कि आगे चलकर तीस सार्वभौमिक गुण सत्य तथा आत्म-संयम पर ही नहीं रुकते, अपितु जान-बूझकर भगवान् के श्रवण, कीर्तन तथा समर्पण तक बढ़ते हैं — क्योंकि जो कर्तव्य उन तक नहीं पहुँचता वह अधूरा ही निभाया गया है। आगे बताए गए वर्ण तथा आश्रम भी सच्चा धर्म तभी हैं जब वे भी हृदय को उसी समर्पण की ओर ले जाएँ; कृषि, यज्ञ, रक्षा तथा सेवा अपने आप में साध्य नहीं अपितु उस एक प्रयोजन के लिए खड़ा किया गया ढाँचा हैं — आत्मा को श्रीहरि में विश्राम पाने योग्य बनाना।



पहले भगवान् नारायण को प्रणाम करते हुए, सिद्ध नारद सम्राट युधिष्ठिर को सदाचरण का सनातन धर्म बताते हैं, जैसा उन्होंने बदरिकाश्रम में सीखा था (SB 7.11.5-7)।

तीस गुण-लक्षण

वर्ण या स्थिति के अनुसार कर्तव्य को विभाजित करने से पूर्व, नारद ने वे गुण निर्धारित किए जो हर मनुष्य के समान रूप से हैं — वह सामान्य धर्म जिससे समस्त विशिष्ट कर्तव्य अपना जीवन पाते हैं। उन्होंने तीस लक्षण गिनाए जिनसे भगवान्, सबकी आत्मा, प्रसन्न होते हैं: सत्य, दया, तप, शौच, तितिक्षा, विवेक, मन तथा इन्द्रियों का संयम, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, त्याग, स्वाध्याय, आर्जव, सन्तोष, समदर्शियों की सेवा, सांसारिक कर्मों से क्रमशः निवृत्ति, स्वार्थपूर्ण कर्मों की निष्फलता पर चिन्तन, व्यर्थ वाणी का संयम, आत्म-अनुसन्धान, समस्त प्राणियों के साथ अन्न आदि

का यथोचित समान वितरण — उन्हें, विशेषकर मनुष्यों को, अपनी आत्मा तथा भगवान् का ही आवास मानते हुए — और, इन सबका शिखर, नवधा भक्ति: भगवान् का श्रवण, कीर्तन तथा स्मरण, उनका सेवन, पूजन तथा वन्दन, अपने कर्म का फल अर्पण, उन्हें अपना परम मित्र मानना, और अन्ततः अपना समूचा स्व उन्हें समर्पित करना।

सत्यं दया तपः शौचं तितिक्षेक्षा शमो दमः ।

अहिंसा ब्रह्मचर्यं च त्यागः स्वाध्याय आर्जवम् ॥ ८ ॥

सन्तोषः समदृक्सेवा ग्राम्येहोपरमः शनैः ।

नृणां विपर्ययेहेक्षा मौनमात्मविमर्शनम् ॥ ९ ॥

अन्नाद्यादेः संविभागो भूतेभ्यश्च यथार्हतः ।

तेष्वात्मदेवताबुद्धिः सुतरां नृषु पाण्डव ॥ १० ॥

श्रवणं कीर्तनं चास्य स्मरणं महतां गतेः ।

सेवेज्यावनतिर्दास्यं सख्यमात्मसमर्पणम् ॥ ११ ॥

नृणामयं परो धर्मः सर्वेषां समुदाहृतः ।

त्रिंशल्लक्षणवान् राजन्सर्वात्मा येन तुष्यति ॥ १२ ॥

*satyaṁ dayā tapaḥ śaucaṁ titikṣeṣā śamo damaḥ ahiṁsā brahmacaryaṁ ca tyāgaḥ svādhyāya
ārjavam santoṣaḥ samadṛk-sevā grāmyehoparamaḥ śanaiḥ nṛṇāṁ viparyayeheṣā maunam
ātma-vimarśanam annādyādeḥ saṁvibhāgo bhūtebhyaś ca yathārhataḥ teṣv ātma-devatā-
buddhiḥ sutarāṁ nṛṣu pāṇḍava śravaṇaṁ kīrtanaṁ cāśya smaraṇaṁ mahatām gateḥ
sevejyāvanatir dāśyaṁ sakhyam ātma-samarpaṇam nṛṇāṁ ayaṁ paro dharmaḥ sarveṣāṁ
samudāhṛtaḥ trimśal-lakṣaṇavān rājan sarvātmā yena tuṣyati*

अर्थ: नारद द्वारा बताए गए ये तीस लक्षण सत्य, दया तथा मन-इन्द्रियों के संयम से आरम्भ होकर अन्ततः भगवान् के श्रवण, उनकी सेवा, उनसे मित्रता, तथा उन्हें अपना सम्पूर्ण स्व समर्पित करने तक पहुँचते हैं। हे राजन्, जो इन्हें धारण करता है वह सबकी आत्मा को पूर्ण सन्तुष्ट करता है; यही, अन्य किसी भी अनुष्ठान से बढ़कर, समस्त मनुष्यों का सर्वोच्च धर्म कहा गया है। (SB 7.11.8-12)



नारद तीस सार्वभौमिक गुण-लक्षण निर्धारित करते हैं — सत्य तथा दया से लेकर नवधा भक्ति तक — हर मनुष्य के सामान्य धर्म के रूप में (SB 7.11.8-12)।

चार वर्णों के कर्तव्य

फिर नारद चार वर्णों के विशिष्ट कर्तव्यों की ओर मुड़े। द्विज वह है, उन्होंने समझाया, जिसके कुल में संस्कार अखण्ड परम्परा में सम्पन्न हुए हों; ऐसे व्यक्तियों पर शास्त्र-अध्ययन, यज्ञ-सम्पादन तथा दान का विधान है, चार आश्रमों के कर्तव्यों सहित। ब्राह्मण के छह कर्तव्य हैं — अध्ययन तथा अध्यापन, यजन तथा याजन, और शुद्ध साधनों वालों से दान लेना तथा देना। क्षत्रिय को प्रजा की रक्षा करनी है तथा उचित कर एवं दण्ड से अपना निर्वाह करना है, किन्तु दान स्वीकार नहीं करना है। वैश्य कृषि, गोपालन तथा ईमानदार व्यापार से जीविका चलाता है, ज्ञानियों के मार्गदर्शन का अनुसरण करते हुए। और सेवा — पहले द्विजों की तथा अपने स्वामी की — शूद्र के पालन-मार्ग के रूप में विहित है। सच्ची विपत्ति के समय, नारद ने जोड़ा, सामान्य सीमाएँ लाँघी जा सकती हैं: व्यक्ति निष्काम प्राप्त वस्तु से, खेत या बाज़ार में छूटे अन्न को बीनकर, किसानों से विनम्र याचना द्वारा, स्वयं भूमि जोतकर, अथवा ईमानदार व्यापार से जीविका चला सकता है — शुद्धता के क्रम में गिनाए गए पाँच मान्य साधन। किन्तु ऐसी विपत्ति में भी उन्होंने एक सीमा दृढ़ता से रखी: ब्राह्मण या क्षत्रिय कभी भी उसे न अपनाएँ जिसे उन्होंने “कुत्ते की वृत्ति” कहा — अयोग्य व्यक्ति की चाटुकारी सेवा से जीविका — क्योंकि ईमानदार कठिनाई लज्जाजनक नहीं, पर सस्ते में बेचा गया स्वाभिमान अवश्य है।



नारद चार सामाजिक वर्णों के कर्तव्य बताते हैं — अध्ययन तथा यज्ञ, रक्षा, ईमानदार व्यापार तथा कृषि, और निष्ठावान सेवा — प्रत्येक शुद्धि का एक मार्ग (SB 7.11.13-20)।

प्रत्येक वर्ण को प्रकट करने वाले गुण

व्यवसाय से अधिक महत्त्वपूर्ण, नारद ने सिखाया, वे आन्तरिक गुण हैं जो किसी व्यक्ति को वस्तुतः प्रकट करते हैं। ब्राह्मण के लक्षण हैं — शम, दम, तप, शौच, सन्तोष, क्षमा, आर्जव, ज्ञान, दया, भगवान् के प्रति समर्पण, तथा सत्य। क्षत्रिय शौर्य, धैर्य, उदारता, आत्म-संयम, क्षमा, ब्राह्मणों के प्रति प्रेम, तथा दुर्बलों की रक्षा से पहचाना जाता है। वैश्य श्रद्धा, गुरुजनों तथा भगवान् के प्रति भक्ति, तथा ईमानदार उद्यम से। और शूद्र विनम्र, निष्कपट सेवा, ईमानदारी, तथा गौओं एवं ब्राह्मणों की रक्षा से।

शमो दमस्तपः शौचं सन्तोषः क्षान्तिरार्जवम् ।

ज्ञानं दयाच्युतात्मत्वं सत्यं च ब्रह्मलक्षणम् ॥ २१ ॥

śamo damas tapaḥ śaucaṁ santoṣaḥ kṣāntir ārjavam jñānaṁ dayācyutātmatvaṁ satyaṁ ca brahma-lakṣaṇam

अर्थ: शान्त, आत्म-संयमी, तपस्वी, भीतर-बाहर से शुद्ध, संतुष्ट, क्षमाशील, सरल, ज्ञानी, दयालु, अच्युत भगवान् के प्रति सर्वस्व-समर्पित, तथा सत्यवादी — हे राजन्, ब्राह्मण इन्हीं लक्षणों से पहचाना जाता है। (SB 7.11.21)

पतिव्रता स्त्री

फिर नारद ने पति के प्रति समर्पित स्त्री के कर्तव्य का वर्णन किया — उसकी प्रेमपूर्वक सेवा करना, अपने घर को स्वच्छ तथा मंगलमय रखना, और केवल उससे ही नहीं अपितु सबसे सत्य तथा प्रिय वचन बोलना। अपने साधनों से सन्तुष्ट तथा लोभरहित, परिश्रमी, सतर्क, शुद्ध, तथा स्नेह से पूर्ण होकर, वह अपने परिवार को प्रसन्न करती है। जो स्त्री अपने पति को भगवान् की प्रतिमा मानकर सम्मान देती है, और उसके प्रति वैसे ही

समर्पित है जैसे देवी लक्ष्मी श्रीहरि के प्रति, वह परम धाम में आनन्दित होती है — क्योंकि ऐसा प्रेम, भक्ति के भाव से अर्पित, शुद्ध करता तथा उठाता है।



नारद उस पतिव्रता स्त्री का वर्णन करते हैं जो एक मंगलमय, सत्यनिष्ठ घर रखती है और अपने पति को भगवान् की सेवा के भाव से सम्मान देती है (SB 7.11.25-29)।

चरित्र, स्वभाव, तथा कामना से मुक्ति

नारद ने अपने प्रवचन को दो गहन अवलोकनों से पूर्ण किया। पहला, कि व्यक्ति के अपने स्वभाव के अनुरूप आचरण, निष्ठा से निर्वहन किया जाए, तो वह क्रमशः तीनों गुणों से परे स्थिति की अवस्था तक ले जाता है। और दूसरा — एक मार्मिक चित्र के साथ — कि मन कामना से सावधान छोटे-छोटे भोगों द्वारा मुक्त नहीं होता, जैसे बार-बार बोया गया खेत अन्ततः बंजर हो जाता है, या अग्नि घी की बूँदों से शान्त नहीं होती:

उप्यमानं मुहुः क्षेत्रं स्वयं निर्वीर्यतामियात् ।

न कल्पते पुनः सूत्यै उप्तं बीजं च नश्यति ॥ ३३ ॥

एवं कामाशयं चित्तं कामानामतिसेवया ।

विरज्येत यथा राजन्नग्निवत् कामबिन्दुभिः ॥ ३४ ॥

upyamānaṁ muhuḥ kṣetraṁ svayaṁ nīrvīryatām iyāt na kalpate punaḥ sūtyai uptaṁ bījaṁ ca naśyati evaṁ kāmāśayaṁ cittam kāmānām atisevayā virajyeta yathā rājann agnivat kāmabindubhiḥ

अर्थ: बार-बार बोया गया खेत स्वयं बंजर हो जाता है, फिर उपजाने योग्य नहीं रहता, और उसमें डाला बीज भी नष्ट हो जाता है। ठीक वैसे ही, हे राजन्, कामनाओं का आश्रय मन उनके अतिसेवन से ही विरक्त होता है — मात्र थोड़े भोग से कभी तृप्त नहीं होता, जैसे अग्नि घी की बूँदों से नहीं बुझती। (SB 7.11.33-34)

समापन शिक्षा — जन्म से ऊपर चरित्र

अन्ततः नारद ने वह सिद्धान्त दिया जो समूचे प्रवचन को नियन्त्रित करता है: व्यक्ति को केवल जन्म से नहीं अपितु उन गुणों से पहचाना जाना है जो वह वस्तुतः प्रकट करता है। यदि किसी एक वर्ण के बताए गए लक्षण किसी अन्य वर्ण के व्यक्ति में दिखें, तो उस व्यक्ति को उन्हीं लक्षणों से वर्गीकृत करना चाहिए — क्योंकि चरित्र, न कि केवल कुल, मनुष्य के सच्चे स्वभाव को प्रकट करता है।

यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं पुंसो वर्णाभिव्यञ्जकम् ।

यदन्यत्रापि दृश्येत तत्तेनैव विनिर्दिशेत् ॥ ३५ ॥

yasya yal lakṣaṇaṁ proktaṁ puṁso varṇābhivyañjakam yad anyatrāpi dṛśyeta tat tenaiva vinirdiśet

अर्थ: किसी व्यक्ति के वर्ण को प्रकट करने वाले जो लक्षण बताए गए हैं — यदि वे किसी अन्य में भी दिखें, तो उस व्यक्ति को उन्हीं लक्षणों से निर्दिष्ट किया जाना चाहिए। (SB 7.11.35)

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. समस्त धर्म का मूल भगवान् हैं। सदाचरण मानव-आविष्कार नहीं अपितु श्रीहरि से, वेदों के मूर्तरूप से प्रवाहित होता है। सही ढंग से जीना, अन्ततः, उनकी ओर बढ़ना है (SB 7.11.7)।
2. कुछ गुण सबके हैं। वर्ण या स्थिति के किसी भी विभाजन से पूर्व, तीस गुण — सत्य, दया, शौच, आत्म-संयम, और सबसे ऊपर भक्ति — हर मनुष्य का सामान्य धर्म हैं (SB 7.11.8-12)।
3. हर ईमानदार जीविका शुद्धि का मार्ग हो सकती है। चाहे व्यक्ति अध्ययन करे, रक्षा करे, व्यापार करे, या सेवा करे, सही भाव से किया गया कर्म हृदय को परिष्कृत करता है और मुक्ति की ओर ले जाता है (SB 7.11.13-20)।
4. चरित्र जन्म से अधिक महत्त्वपूर्ण है। व्यक्ति वस्तुतः उन गुणों से पहचाना जाता है जो वह प्रकट करता है, न कि केवल कुल से; गुण-लक्षण किसी में भी प्रकट हो सकते हैं (SB 7.11.21, 35)।
5. कामना भोग से नहीं जीती जाती। कामना छोटे-छोटे भोगों से वश में नहीं होती अपितु केवल तभी जीती जाती है, जैसे अग्नि को घी की बूँदों से अधिक चाहिए — यही कारण है कि इसके स्थान पर भक्ति तथा संयम की ओर मुड़ें (SB 7.11.33-34)।

एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

इस अध्याय की रचना में एक शान्त उदारता है। नारद वर्ण-विभाजन से आरम्भ कर सकते थे, किन्तु इसके स्थान पर वे उन गुणों से आरम्भ करते हैं जो हम सबके हैं — सत्य, दया, शौच, तथा भगवान् का श्रवण एवं स्मरण — मानो कह रहे हों कि पवित्रता का द्वार हर किसी के लिए किसी भी वर्ण-प्रश्न के उठने से पूर्व ही खुला है। तभी वे विशिष्ट कर्तव्य बताते हैं, और वहाँ भी वे आग्रह करते हैं कि व्यक्ति को वस्तुतः चरित्र नाम देता है, न कि जन्म। हर भेद के नीचे एक ही धारा बहती है: कि समस्त सदाचरण का स्रोत भगवान् में है और उसका प्रयोजन हृदय को उनकी ओर

लौटाने में। इस दृष्टि से देखें तो कर्तव्य बाहर से थोपा गया बोझ नहीं अपितु हृदय का प्रशिक्षण है — हर ईमानदार कर्म, चाहे किसी भी जीविका में, स्वार्थी कामना की पकड़ को धीरे-धीरे ढीला करता है जब तक आत्मा भगवान् में विश्राम पाने योग्य न हो जाए। नारद जो मार्ग खींचते हैं वह हर जीवन के लिए विस्तृत है, और उस पर हर पथ घर ले जाता है।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज, नारद की सूची में से एक सार्वभौमिक गुण चुनें — सत्य, दया, सन्तोष, या भगवान् का सरल स्मरण — और उसे दिन भर सचेत रूप से अभ्यास करें, जो भी कार्य आपका है उसमें। अपना सामान्य कर्तव्य बोझ के रूप में नहीं अपितु एक अर्पण के रूप में करें, और जब कोई कामना उठे, तो उसे किसी छोटे भोग से नहीं अपितु मन को भगवान् की ओर मोड़कर मिलें, भीतर धीरे से दोहराते हुए: “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।” आपकी जीविका, जो भी हो, हृदय को शुद्ध करने का साधन बन जाए।

उपसंहार

सप्तम स्कन्ध का एकादश अध्याय पाठक को कथा से शिक्षा की ओर उठाता है, जब नारद युधिष्ठिर के प्रश्न का उत्तर सनातन धर्म के शास्त्र के सर्वाधिक स्पष्ट मानचित्रों में से एक से देते हैं। वर्ण, वृत्ति तथा गृहस्थी के हर नियम के नीचे एक ही सत्य छिपा है: कर्तव्य कभी अपने-आप में साध्य नहीं है। तीस सार्वभौमिक गुण, प्रत्येक वर्ण के लक्षण, तथा कामना पर संयम — ये सब हृदय को भगवान् के चरणों में समर्पण की ओर ले जाने के लिए ही हैं, और व्यक्ति का सच्चा वर्ण भी अन्ततः जन्म से नहीं, चरित्र से ही निश्चित होता है। सत्य से जीना, निष्ठा से सेवा करना, तथा हर कर्म भगवान् को अर्पित करना — यही वह सनातन मार्ग है जो नारद हर आत्मा के लिए, हर स्थिति में खोलते हैं।

श्रीमद्भागवतम् का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जगाए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

सन्दर्भ तथा आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, पूर्ण), सप्तम स्कन्ध, एकादश प्रवचन, पृष्ठ 705–711।
- शृंखला: Srimad Bhagavatam Wisdom · Biswa Sanatan Dharma Seva Trust।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन तथा अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, निष्ठावान पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण में दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश के रूप में दिए गए हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद या भाष्य का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी भी प्रकाशक द्वारा संबद्धता या समर्थन का कोई अभिप्राय नहीं है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-7-chapter-11-eternal-dharma-and-the-four-social-orders-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

